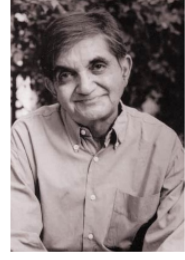


जलती झाड़ी



निर्मल वर्मा

हिन्दी
ADDA

जलती झाड़ी

मैं उस शहर में पहली बार आया था। सोचा था, चंद दिन यहाँ रहकर आगे चला जाऊँगा; किंतु कुछ अप्रत्याशित कारणों से रुक जाना पड़ा। दिन-भर होटल में रहता और जब ऊब जाता, तो अक्सर घूमते हुए इस स्थान की ओर कदम बढ़ जाते। अजनबी शहरों में भी हर यात्री अपने प्रिय कोने खोज लेता है...

वैसे भी कई बार वहाँ जाने को मन हुआ था। रात को किसी सस्ते रेस्तराँ की तलाश करते समय अक्सर उस तरफ निगाह चली जाती या कभी ट्राम की खिड़की से पुल पार करते हुए एक दबा-सा मोह जग जाता। इच्छा होती, यहीं उतर जाऊँ। किंतु एक हल्की-सी हिचक उभर आती, और मैं उसके तले दब जाता।

वह दिन कुछ अलग-सा रहा होगा। मैं दिन-भर होटल के अकेले कमरे में सोता रहा था। फिर कुछ जरूरी पत्र लिखे और उन्हें पोस्ट करने के बहाने बाहर चला आया।

वापस आते हुए मैंने जान-बूझकर रास्ता बदल लिया। संभव है, एक धुँधले ढंग से मैंने अपने को ढीला छोड़ दिया... ऐसा अक्सर होता है। जब कभी मैं दिन-भर सोकर बाहर आता हूँ, तब अपने को एक नए सिरे से छोड़ देने की इच्छा होती है - खासकर अजनबी शहरों में जहाँ हमें कोई नहीं पहचानता, और हम किसी शर्म और झिझक के बिना एक रास्ता छोड़कर दूसरे रास्ते पर हो लेते हैं।

ऐसा ही एक पतझड़ का दिन था, जब मैं वहाँ चला आया था।

वह एक टापू था - शहर के छोर पर, जहाँ पहाड़ी शुरू होती है। नदी की दो धाराएँ कैंची की तरह उसे बीच में से काट गई थीं। पुल के नीचे लंबी घास पानी में भीगती रहती थी। किनारे पर दूर-दूर लाल तख्तों की बेंचें पड़ी थीं। उन दिनों अक्सर ये बेंचें खाली रहती थीं। बिलकुल खाली भी नहीं... पत्ते लगातार उन पर झरते रहते। जब कभी हवा का कोई झोंका उन्हें उड़ा ले जाता, तो वही झोंका वापस मुड़कर दूसरे पत्तों को उन पर बिखरा देता। वे कभी ज्यादा देर तक खाली नहीं रहती थीं। पानी बहता रहता। उसकी आवाज के संग हमेशा एक और आवाज मन में आती थी... किसी दिन वहाँ जाऊँगा।

और ऐसे ही एक पतझड़ के दिन मैं वहाँ चला आया था...

किनारे-किनारे चलते हुए मैं उन बच्चों से अलग था, जो पुल के नीचे खेल रहे थे। उन्होंने शायद मुझे देखा भी नहीं। वे पत्तों का ढेर बना देते थे और उन्हें माचिस से

जलाकर भाग जाते थे। शाम की मद्धिम धूप में धुएँ के दायरे फैल जाते थे। एक सौंधी-सी गंध टापू के इर्द-गिर्द हवा में तिर जाती थी।

मैं पुल से दूर चला आया - दूसरी तरफ, जहाँ पेड़ों की नंगी शाखाएँ पानी को छू रही थीं। वहाँ गीली घास का एक टुकड़ा नदी के छोर तक चला गया था। ढलान पर उतरते ही निगाह अचानक उस पर टिक गई। पाँव अनायास ठिठक गए।

वह एक बहुत बूढ़ा व्यक्ति था। एक छोटी-सी स्पोर्ट-चेयर पर बैठा था - बिलकुल निश्चल और खामोश। मुँह में पाइप दबी थी, जो न जाने कब से बुझ चुकी थी। हाथ में मछली पकड़ने का काँटा था - नदी के गँदले पानी में दूर तक डूबा हुआ। किंतु उसका ध्यान काँटे की तरफ नहीं था - वह टापू के परे शहर के पुलों की ओर देख रहा था। रह-रहकर मुँह में दबी पाइप हिल उठती थी।

वह टापू का नीरव कोना था। मैं निरुद्देश्य घूमता हुआ थक गया था। अपना चमड़े का बैग मैंने भीगी घास पर रख दिया और वहीं बैठ गया।

पास, मेरे बिलकुल पास, एक नंगा वृक्ष खड़ा था। बारिश में भीगा लेकिन गरम। उसकी गरमाई धीरे-धीरे मुझे छूने लगी। पिछले एक सप्ताह से इस शहर पर पानी बरसता रहा था। घास के नीचे मिट्टी नम थी, और इतनी मुलायम कि पैर नीचे दबने लगते थे।

यह पहला दिन था, जब बारिश थमी थी। बादल अब भी थे, कुछ टापू पर, कुछ हटकर शहर की पहाड़ी पर, किंतु अब वे खाली और हल्के थे और हवा में उड़ते-से जान पड़ते थे।

मैं काफी देर तक वहाँ बैठा रहा। इस दौरान मैं बूढ़े ने एक भी मछली नहीं पकड़ी। एक बार काँटा हिला था - उसने लपककर डंडी खींची। मैंने सोचा, अब एक तड़पता हुआ मांस का लोथ ऊपर आएगा। मैं खुद शायद काफी उत्तेजित हो गया था और पानी के पास सरक आया था। किंतु कुछ भी नहीं हुआ। उसने नदी से काँटा बाहर निकाला, फिर मेरी ओर देखकर हँसने लगा। काँटा खाली था - मछली बहुत सफाई से अपना आहार चुरा ले गई थी।

हम दोनों फिर अपनी-अपनी जगह चुपचाप बैठे रहे। बूढ़े ने अपने काँटे में चारा भरा और फिर दूर हवा में उछालकर पानी में डुबो दिया। बहते पानी पर एक चौड़ा-सा दायरा फैल गया - धूप में पारे-सा चमकता हुआ, और फिर मिट गया।

उसने अपनी पाइप दुबारा सुलगा ली और पुराने ओवरकोट के कॉलर ऊपर कानों तक चढ़ा लिए। पानी पर तिरती धूप का एक हिस्सा बच्चों के लट्टू-सा घूमता हुआ किनारे आ लगता था और टूट जाता था। किंतु बूढ़े का ध्यान उधर नहीं था। मैं बहुत सोचता हुआ भी ठीक से निश्चय नहीं कर पाया कि उसकी आँखें किस खास बिंदु पर टिकी हैं। उसकी आँखें खुली हैं या बंद, यह भी सही-सही कह पाना कठिन था।

किंतु रफता-रफता मेरा भ्रम पक्का होता गया और वह भ्रम किस चीज को लेकर था, मैं आज तक ठीक से नहीं जान सका, किंतु वह अवश्य किसी अज्ञात संदेह का द्योतक रहा होगा। वह सिर्फ एक बार मुझे देखकर हँसा था, किंतु मुझे आश्चर्य है कि क्या उस समय भी उसने मुझे ठीक से देखा था? यदि नहीं देखा था तो मेरी ओर उन्मुख होकर हँसने की जरूरत क्यों महसूस हुई?

मुझे अपने भीतर एक अजीब-सी बेचैनी महसूस होने लगी। उसे मेरे अस्तित्व का बिलकुल भी आभास नहीं, हालाँकि मैं उसके इतने पास बैठा हूँ - यह मुझे अत्यंत अस्वाभाविक-सा जान पड़ा। अजाने शहरों में कभी-कभी आत्मीयता की भूख कितनी उत्कट हो जाती है, यह उस क्षण से पहले मैं नहीं जान पाया था।

निस्संदेह वह कहीं किसी खास चीज पर आँख टिकाए था - ऐसा कुछ जो मेरी आँखों के घेरे के भीतर छुआ भी मुझसे अछूता था।

किंतु मैंने कोशिश की। उसकी आँखों के सामने शहर का सबसे पुराना पुल था, उसके परे नेशनल थियेटर की बारीक दीवारें और छत और बीच में पुल का टॉवर, जो शाम को डूबती रोशनी में झिलमिला रहा था। किंतु ये ऐसी चीजें थीं, जिन्हें उस शहर में चलते हुए, गलियों से गुजरते हुए, हम रोज देखते थे। इनमें कुछ भी विशिष्ट, कुछ भी असाधारण नहीं था, कम-से-कम इस बूढ़े के लिए तो नहीं, जो शायद बरसों से इस शहर में रह रहा है। मेरे भीतर का भ्रम फिर जागने लगा - इसके अलावा भी शायद कुछ और है, कुछ अन्यतम, बिलकुल अलग से...

किंतु क्या यह आदमी देख सकता है? अचानक मेरे मस्तिष्क में यह बेतुका विचार कौंधा गया। वह बहुत बूढ़ा है...

हवा का हल्का-सा झोंका आया-धूप धीरे-धीरे उड़ने लगी। समूचे टापू पर एक जड़वत् निस्तब्धता-सी घिरने लगी। पत्ते पानी पर झरते थे और बह जाते थे। सिर्फ धूप के कुछ टुकड़े शेष रह गए थे - पत्थरों पर, टहनियों पर। कुछ देर बाद शाम उन्हें भी बुहार ले जाएगी - सिर्फ हम दोनों वहाँ बने रहेंगे।

किंतु नहीं... वह जा रहा है। मेरी आँखें अनायास ऊपर उठ आईं। वह सचमुच जा रहा था। उसने मछली पकड़ने के काँटे को पानी से बाहर निकाल लिया, कैनवास की कुर्सी को लपेटकर बगल में दबा लिया, फिर बहुत पुराना, जर्द बाउलर हैट पहना और पाइप मुँह से बाहर निकालकर जेब में रख ली। मछली पकड़ने का झोला-जो खाली था - उसने काँटे की डंडी पर लटका लिया था।

न जाने क्यों, उस क्षण मेरे भीतर एक अजीब-सी झुरझुरी फैल गई। लगा, जैसे मैं एक बहुत पेचीदा रहस्यमय ढंग से उस पर आश्रित हूँ, जैसे उसके जाने-भर से ही मैं कुछ खो दूँगा, जो एक लंबी मुद्दत से मुझमें पलता रहा है, जैसे उसका यहाँ रहना खुद मेरे रहने से जुड़ा है... किंतु उस क्षण शायद कुछ हुआ, शायद सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट या शायद कोई पत्थर पानी में लुढ़क गया होगा - और वह चौंक गया, जैसे उसके पाँव धरती पर बँधे-से रह गए, जैसे किसी ने उसे पकड़ लिया हो। उसने एक बार पीछे मुड़कर देखा, नदी के बहते पानी की तरफ और फिर तेजी से कदम बढ़ाता हुआ मेरे सामने से निकल गया।

जाते हुए उसने एक बार भी मेरी ओर नहीं देखा। कुछ देर तक टापू में उसके पैरों के नीचे दबते पत्तों की चरमराहट सुनाई देती रही... फिर सबकुछ पहले-जैसा खामोश हो गया।

ऐसे ही कुछ क्षण बीते होंगे। मैं अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ और ठीक उसी स्थान पर आकर बैठ गया, जहाँ कुछ देर पहले बूढ़ा मछुआ बैठा था, गीली मिट्टी पर उसके जूतों के निशान अब भी दिखाई देते थे - बहुत लंबे नहीं किंतु काफी चौड़े और आगे की तरफ से तनिक बेडौल। वे मुझे बहुत साधारण-से लगे और ज्यादा देर तक मेरा ध्यान उन पर नहीं टिक सका।

इस बीच अवश्य कुछ समय गुजरा होगा... बाद में जब मेरा ध्यान अपनी तरफ गया, तो मुझे कुछ हैरानी-सी हुई। दरअसल पिछले कुछ समय से मैं उसी तरफ - बिना किसी निश्चित इरादे या संकल्प के उसी तरफ देख रहा था, जहाँ कुछ देर पहले बूढ़े की आँखें लगी थीं। किनारे के पास लगी झाड़ियों पर कुछ परिंदे उड़े थे। एंबैंकमेंट के परे एक बहुत पुराने गिरजे के शीशे पर आखिरी धूप का धब्बा चमक रहा था - उसकी छाया एक डबडबाती सुर्ख आँख-सी दरिया के बीच चमक जाती थी।

कोई नहीं जानेगा, मैंने सोचा, कोई नहीं जानेगा कि अभी कुछ देर पहले तक वह बूढ़ा यहाँ, इसी जगह बैठा था। इस खयाल से मुझे सांत्वना मिली कि मैंने उससे छुटकारा पा लिया है। बहुत मुमकिन है कि वह महज मेरा भ्रम हो, एक झूठा भटकाव, जो

अक्सर अजनबी शहरों में घूमते हुए हो जाता है। होटल के कमरे में पहुँचते ही - जब मैं अपने को नए सिरे से अकेला पाऊँगा - तो हर चीज अपने औसत असली घरे में लौट आएगी।

सामने पुल पर ट्राम जा रही थी... उसकी बत्तियों की छाया चमकीली झालर-सी पानी पर फिसलती रही। कुछ लोग खिड़की से बाहर इस टापू को देख रहे थे - बिलकुल वैसे ही स्वाभाविक और सहज ढंग से, जैसे मैं आर-पार जाते हुए देखा करता था। किंतु अब मैं खिड़की से लटकते हुए उनके चेहरों को देखकर कुछ बेचैन-सा हो उठा - अपने पर शंका-सी होने लगी, जैसे मैंने यहाँ आकर कोई गलती कर डाली हो... लगा, जैसे मुझे भी उनकी तरह पुल के पार सीधे चला जाना चाहिए था।

कोशिश करूँ तो अब भी जा सकता हूँ सिर्फ...

मुझे अपने पीछे हल्की-सी आहट सुनाई दी। दो लड़के मेरी ओर बहुत मंद गति से चले आ रहे थे। इस शहर के अन्य लड़कों की तरह उनके सिर गोल, नीली टोपियों से ढक थे। छोटे लड़के के हाथ में एक चौड़ा रंग-बिरंगा रूमाल था। वह पेड़ों से झरे हुए, पीले मुरझाए पत्ते उस रूमाल में बटोरता जाता था। बड़ा लड़का, जो पहले से कद में ऊँचा था, किंतु उम्र में ज्यादा बड़ा नहीं लगता था, अनमने भाव से एक छोटी-सी टहनी हवा में घुमाता हुआ चल रहा था। वे दोनों टापू के अंतिम छोर पर आ गए थे - उस जगह तक, जहाँ किनारे पर लगी झाड़ियाँ पानी में भीग रही थीं।

छोटा लड़का दबे कदमों से ढलान पर उतरा और रूमाल में बँधे सब पत्ते पानी में छोड़ दिए। फिर उसने अपने कोट की दोनों जेबों से कुछ और पत्ते निकाले - गीली मिट्टी में लिथड़े पत्ते - और फिर उन्हें भी दोनों हाथों से बहते पानी में बहा दिया। इस बीच मुझे महसूस हुआ कि बड़ा लड़का मुझे देख रहा है - अब भी वह छोटी-सी नंगी टहनी हवा में घुमा रहा था। उसके दाँतों के बीच घास का एक तिनका था, जिसे वह बराबर चबाए जा रहा था। छोटा लड़का पत्तों को बहाकर ऊपर आ गया। वे दोनों अब एक संग खड़े मुझे देख रहे थे।

एक निगाह होती है, सीधी और निश्चित। उसमें हम बँधा जाते हैं और रील की मानिंद खिंचते चले जाते हैं। मुझे ऐसा अक्सर हो जाता है। सुई की नोक तले जैसे कोई कीड़ा दब जाता है - बदहवास होकर तिलमिलाता है, फिर ठहर जाता है... मंत्रमुग्ध-सा, मूर्खच्छत... वैसे ही, बिलकुल वैसे ही।

फिर बड़ा लड़का आगे बढ़ा। बहुत सहज भाव से वह मेरे निकट चला आया। और मुझे लगा जैसे उसका इस तरह मेरे पास चला आना बहुत स्वाभाविक है, जैसे पिछले कुछ क्षणों से मैं खुद उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

- आज कैसे हो? - उसने पूछा। मैं कुछ भी कह पाता कि मुझे लगा, पीछे खड़ा छोटा लड़का बहुत ही विरक्त भाव से मुस्करा रहा है।

- आज भी खाली हाथ हो?

खाली हाथ? मेरी आँखें अनायास अपने हाथों पर झुक आईं - वे सचमुच खाली थे।

- मेरा मतलब इनसे नहीं है - बड़े लड़के ने उसी सहज, संयत स्वर में कहा - आज भी तुम कुछ नहीं पकड़ पाए?

- किंतु... तुम्हें गलतफहमी हुई है। मैं वह नहीं हूँ, जिसे तुम खोज रहे हो। वह तो कब का चला गया।

"कहाँ?"

मैंने अपने चारों ओर देखा। टापू पर डूबते सूरज की पीली, मैली-सी ललाहट फैल गई थी। दूर पुल के पास जलते पत्तों के ढेर से अब भी धुआँ उठ रहा था, किंतु वह कहीं भी न था। सिर्फ हवा चलने से पत्ते बेंचों से लुढ़ककर धरती पर लोटने लगते थे।

वह अब यहाँ नहीं है - मैंने कहा, - किंतु न जाने क्यों, इस बार मेरे स्वर में पहले जैसी दृढ़ता नहीं थी।

लेकिन तुम तो यहाँ हर रोज आते हो... छोटे लड़के ने कहा - उधर देखो, तुम्हारे बूट के निशान अब भी हैं।

मैंने देखा, मेरे पैर से सटा अब भी वह निशान साफ दिखाई दे रहा था, भरा-भरा-सा चौड़ा और आगे की तरफ से तनिक बेडौल टूटी, उखड़ी हुई घास के बीच जूते की साफ साबुत छाप। बदन के एक कटे हिस्से की तरह वह निशान गीली जमीन से चिपका रह गया था।

किंतु वह मेरा नहीं है - अत्यंत अनिश्चित और कमजोर लहजे में मैंने प्रतिवाद किया। वे चुपचाप खड़े रहे। मुझे लगा, जैसे वे प्रतीक्षा कर रहे हैं कि मैं प्रमाण देने के लिए

अपने पैर आगे बढ़ाऊँगा। खुद मेरे लिए यह क्रिया बहुत स्वाभाविक होती, किंतु कोई ताकत मुझे रोके रही। मैं पूरी शक्ति से अपने पैरों को लंबी घास में छिपाए रहा।

फिर कुछ भी नहीं हुआ। लगा, जैसे उस क्षण के बाद उनकी दिलचस्पी मुझमें खत्म-सी हो गई है। छोटा लड़का पूर्ववत् अपने रूमाल में नीचे गिरे पत्तों को बटोरता हुआ दूर निकल गया। बड़ा लड़का अवश्य कुछ क्षण तक वहाँ खड़ा रहा था, मेरी ओर से बिलकुल उदासीन और तटस्थ।

तब मैं अचानक चौंक-सा गया। वह उसी जगह खड़ा था, जहाँ बूढ़ा चलते-चलते कुछ क्षणों के लिए ठिठक गया था। बिलकुल वही जगह और उसकी आँखें उसी अज्ञात बिंदु पर जा टिकी थीं, जहाँ बूढ़ा इतनी देर से एकटक देख रहा था।

वह महज एक संयोग रहा होगा, उससे ज्यादा कुछ भी नहीं, क्योंकि कुछ देर बाद ही उसने अपने पास पड़े एक ढेले को ठोकर मारकर पानी में लुढ़का दिया। पानी हिला। कहीं बहुत नीचे बहुत-सी परतें खुलती चली गईं। झाड़ी के पास गीली मिट्टी पर रेंगती हुई कीड़ियों की कतार लमहा-भर रुककर फिर आगे बढ़ चली। उसने मुँह का तिनका पानी में थूक दिया। सिर से टोपी उतारकर उसे हवा में एक-दो बार झटकाकर पहन लिया और फिर उसी पुराने, अनमने भाव से टहनी को हवा में घुमाता हुआ छोटे लड़के के पीछे चल दिया।

इतना ही हुआ। वे चले गए थे, मुझे अपने पर छोड़कर। मैं फिर वहाँ अकेला छूट गया था, किंतु उनके जाने के बाद पहले का-सा अकेलापन वापस नहीं आया। जब तक अकेलापन संग रहता है, सही मानों में तब हम अकेले नहीं होते। अब मैं सिर्फ अपने संग था और मुझे यह खयाल काफी भयानक लगा कि वे दोनों मुझसे कुछ छीन ले गए हैं, जो अब तक मेरे संग था।

उसके बाद मैं ज्यादा देर तक वहाँ नहीं बैठ सका। मैं फिर अपनी पुरानी जगह वापस आ गया - पेड़ के तने के पास-जहाँ अब भी मेरा बैग रखा था। हम कितनी जल्दी और कितनी बेचैनी से सुरक्षा की टोह पा लेते हैं।

शहर की पहाड़ियाँ अब अँधेरे में छिप गई थीं; किंतु उनके ऊपर पीछे की ओर उठती हुई गोथिक गिरजे की धूमिल मीनारें एक अधाभूले स्वप्न की तरह हवा में टँगी थीं। उन्हें देखकर लगता था जैसे एक विशालकाय पक्षी उड़ता हुआ अचानक ठिठक गया हो, पहाड़ी और खुले आकाश के बीच उसके दोनों पंख ऊपर की ओर मुड़ गए हों - पथरा गए हों खाली हवा पर।

टापू से कुछ दूर शहर के पुराने पुल की बतियाँ झिझकती-सी एक के बाद एक जलने लगी थीं। बहते पानी में उनकी छाया टिमटिमाती मोमबतियों-सी काँप जाती थी...

बहते पानी को देखना शायद बहुत अजीब है। ज्यादा देर तक एकटक देखते रहो तो लगता है, हममें से भी कुछ टूट-टूटकर उसके संग बह रहा है। हमारे भीतर दूरी के जो हिस्से हैं, जिन्हें कभी-कभार सोते हुए नींद की चंद लहरें भिगोकर वापस लौट जाती हैं, जो हमारी आधी अँधेरी जिंदगी का हिस्सा हैं, लगता है, जैसे वे स्याह, गहरे पानी के भीतर से उन पर झाँक रहे हों, हमें देख रहे हों।

क्या पहले मैंने कभी देखा है - उन दो लड़कों को, जो अभी-अभी यहाँ से चले गए थे? किंतु इस शहर में मैं अजनबी हूँ। यदि आज रात अचानक मैं यहाँ से चला जाऊँ, तो होटल के मैनेजर और पुलिस के अलावा किसी को कुछ भी पता नहीं चलेगा। नहीं, यह मेरा भ्रम है। उन्होंने जरूर मुझे पहचानने में गलती की है। ऐसा धोखा अक्सर हो जाता है। हो सकता है वे मजाक कर रहे हों। बच्चे अक्सर विदेशी को देखकर मजाक करते हैं।

मुझे हल्की-सी खुशी हुई कि वे अब चले गए हैं और मैं जान-बूझकर यह खुशी अपने से छिपाता रहा, जैसे मैं उस पर शर्मिन्दा हूँ। टापू पर सिर्फ जलते हुए पत्तों पर से दो-चार बुझती हुई लपटें उठ जाती थीं। बच्चे उन्हें इसी तरह जलते छोड़ बहुत पहले चले गए थे। और अब चारों तरफ खामोशी थी - वैसी ही अटूट और अनवरत, जैसे बहते पानी का स्वर। इस बीच टापू और नदी की सीमा-रेखा मिट गई थी या मिटी नहीं थी - अँधेरे में पानी को पहचानना मुश्किल था। बहुत गौर से देखने पर एक हल्की सफेद तरलता नजर आती थी, जिस पर शाम की हवा थी जो कभी ठहर जाती थी, कभी पानी में पुल की बतियाँ को झकझोरकर आगे खिसक जाती थी...

सरदी अचानक बढ़ गई। मैं वहाँ से जाने का इरादा कर रहा था। किंतु तभी मुझे आभास हुआ कि मैं वहाँ बिलकुल अकेला नहीं हूँ। मेरी दाहिनी ओर, जहाँ झाड़ी थी, हल्की-सी सरसराहट हुई। पहले सिर्फ दो धुँधली-सी छायाएँ दिखाई दीं, बाद में मैं उन्हें ठीक से अलग-अलग देख पाया। लड़की के स्कर्ट का अगला हिस्सा शायद झाड़ी में फँस गया था और वह उसे बाहर निकालने के लिए नीचे झुकी थी। शायद झाड़ी की सरसराहट ने ही मेरा ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया था। उसके जरा पीछे एक अन्य व्यक्ति था, जिसे मैं पहली निगाह में ठीक से नहीं देख पाया था। शायद इसलिए कि वह बिना हिले-डुले बिलकुल खामोश खड़ा था। शायद इसलिए भी कि उसके लंबे

ओवरकोट ने अँधेरे में उसे कुछ इस ढंग से छिपा लिया था कि गौर से देखे बिना उसके अलग अस्तित्व को पहचानना असंभव था।

मैंने सोचा, मुझे वहाँ से चुपचाप उठकर चले जाना चाहिए। मुझे मालूम था, अँधेरा घिरने पर अक्सर वहाँ प्रेमियों के जोड़े आते हैं। वैसे मुझे वहाँ बैठने में कोई आपत्ति नहीं थी, यदि वे मुझे देख लेते। तब इन्हें मेरी उपस्थिति का ज्ञान होता। किंतु ऐसी स्थिति में, जब मैं उन्हें देख रहा हूँ, और उन्हें यह भ्रम हो कि अकेले हैं, मुझे अपना वहाँ रहना अरुचिकर जान पड़ा। किंतु इससे पेशतर कि मैं कुछ भी निश्चय कर पाता, वे दोनों उस झाड़ी में चले गए।

टापू में उस समय एक असीम, निर्भेद्य मौन सिमट आया था और दूर की हल्की, दबी आवाज भी साफ सुनाई दे जाती थी। फिर वह झाड़ी मेरे काफी करीब थी - मुश्किल से तीन गज की दूरी पर। उन दोनों की गहरी हाँफती, टूटी-सी साँसें मुझ तक पहुँच जाती थीं - एक धधकती-सी गरमाहट झाड़ी के बाहर निकलती थी, बीच की हवा को छीलती, भेदती, मंत्र-मुग्ध साँप की तरह बल खाती हुई मुझे लपेट लेती थी। झाड़ी बार-बार हिल उठती थी, मानो उनकी गरम, बोझिल साँसों का भार न सँभाल पा रही हो। उनके नीचे दबे पत्ते बार-बार चरमरा उठते थे।

एक दबी, उफनती-सी चीख, फिर सिसकती-सी कराहट, फिर वह भी नहीं... एक खाली, हल्की हवा, और तब सबकुछ पहले-जैसा शांत हो गया।

मुझे आज भी यह सोचकर अपने पर हैरानी होती है कि मैं वहाँ से चला क्यों नहीं आया। जो कुछ झाड़ी के पीछे हो रहा था, उसके प्रति मेरे मन में न कोई जिज्ञासा थी, न जुगुप्सा... कौतूहल भी नहीं। फिर भी मेरे पाँव नहीं उठे, मैं जड़वत् बैठा रहा।

कुछ देर बाद वे बाहर आ गए। या शायद मुझे आभास हुआ कि वे दोनों झाड़ी के बाहर आए हैं, हालाँकि मैं उस क्षण सिर्फ लड़की को ही ठीक से देख पाया था। उसने अपने बाल ठीक किए। स्कर्ट पर जो पत्ते और तिनके चिपक आए थे, उन्हें करीने से, एक-एक करके अलग किया। फिर वह झाड़ी से कुछ दूर आगे चली आई - दरिया के पास। मैं अपने आश्चर्य को नहीं दबा पाया, जब मैंने देखा कि वह उसी जगह बैठ गई थी, जहाँ पहले बूढ़ा और बाद में मैं कुछ देर के लिए बैठा था।

मैं उसे देख लेता हूँ। उसने सिगरेट जला ली है। उसके बाल बहुत छोटे हैं - बिलकुल लड़कों के-से - काले रंग की बरसाती पहने है, बटन खुले हैं, जिसके नीचे स्कर्ट घुटनों तक ऊपर खिसक आई है। एक दबी, खिंची साँस के संग धुआँ बाहर निकल आता

है... आँखें अधमुँदी-सी रह जाती हैं...

- देखा तुमने? - वह धीरे-से बुड़बुड़ाई। मैं चुप रहा। वह अपने से ही कुछ कह रही है - मैंने सोचा और चुप रहा।

- मुझे लगा, जैसे तुम चले गए हो।

- आपने मुझसे कुछ कहा?

वह हँसने लगी।

- और यहाँ कौन है?

फिर भी वह मेरी ओर नहीं देख रही थी। वह दरिया के दूसरे छोर पर देख रही थी - एक ही बिंदु पर। मुझे सहसा खयाल आया कि बूढ़ा मछुआ भी उसी ओर देख रहा था... पुलों और चर्च की बुर्जियों के परे - जहाँ शहर की रोशनियाँ खत्म होती हैं... अँधेरा शुरू होता है।

- तुम पहले ही चले आए? - उसने कहा।

- मैं... मैं यहीं था-उसने मुझसे ही पूछा था और इस बार मुझे पहले जैसा विस्मय नहीं हुआ।

- और वहाँ...? - उसने पीछे मुड़कर झाड़ी की ओर संकेत किया।

मैं कुछ भी नहीं समझा, उसकी ओर प्रश्न-भरी निगाहों से देखता रहा।

- वहाँ मैं अकेली नहीं गई थी।

वह फिर हँसने लगी। इस बार वह हँसी पहले-जैसी नहीं थी। उसमें एक बीभत्स अविश्वास भरा था, जैसे मैं पकड़ लिया गया हूँ। वैसे ही जैसे हम गलती से किसी अपरिचित घर का दरवाजा खटखटा लें और इससे पेशतर कि हम लौट पाएँ, कोई हमारा हाथ खींचकर हमें भीतर घसीट ले...

- लेकिन आपके संग... मैं सहसा सहम जाता हूँ... अनायास मेरी आँखें झाड़ी पर उठ जाती हैं। हवा चलने से एक-दूसरे से उलझी टहनियाँ हल्के से अलग हो जाती हैं... बीच में फँसी पतियाँ फट जाती हैं। पहचान लेना मुश्किल नहीं है। मैं पहचान लूँगा और वह जान जाएगी कि मैं वह नहीं हूँ, जो उसने समझा है।

- वह वहाँ है। मैंने उसे आपके संग देखा था। - मैंने कहा।

- किधर देखा था? उसके स्वर में एक बहुत निरीह, कातर-सी आशा उभर आई, जैसे मेरे उत्तर पर उसका बहुत-कुछ निर्भर है, जैसे उसकी नियति का धागा मेरे शब्दों में बँधा है...

- किधर देखा था?

- देखिए, उधर झाड़ी में... वह अब भी है।

- वह कौन?

झाड़ी काँपती है, जैसे उसके भीतर-ही-भीतर कुछ जल रहा हो।

वह मेरे निकट सरक आई... क्या मैं सच हूँ? एक नरम-सी सरसराहट हुई, जैसे उसने मेरे भीतर एक पन्ना उलट दिया हो।

और वह जैसे आखिरी पन्ना हो, उसके आगे कुछ भी नहीं।

और मुझे लगा, जैसे उस शाम दूसरी बार किसी ने मुझसे अपने 'सच' का प्रमाण माँगा हो। झाड़ी मुझसे सिर्फ तीन कदम दूर है - तीन कदम भी नहीं, शायद उससे भी कम। मुझे वहाँ जाने में बहुत कम समय लगेगा। मैं पहले एक कदम लूँगा, फिर दूसरा और फिर वह मेरे सामने होगा। हर कदम मुझे उस झाड़ी के पास ले जाएगा जहाँ वह है, अब भी है।

इसमें कुछ भी मुश्किल नहीं, कोई भी डर नहीं। यह इतना सहज और आसान है कि मेरा दिल तेजी से घबराने लगता है। मैं सिर्फ एक कदम लूँगा - और फिर सोचूँगा कुछ भी नहीं... दूसरा कदम लूँगा और तब-तब बहुत कम समय लगेगा और मैं एक ऐसी उम्र में पहुँच गया हूँ, जहाँ इतना समय ज्यादा मानी नहीं रखता। देखो (मैं अपने से कहता हूँ), देखो वह प्रतीक्षा कर रही है। साँस रोके, मेरी ओर संदेह-भरी दृष्टि से देखते हुए। कुछ ऐसे ही जैसे वह लड़का तिनका चबाता हुआ मेरी ओर देख रहा था...

मैं खड़ा हो जाता हूँ - झाड़ी की तरफ बढ़ता हूँ। उसकी आँखें मुझ पर चिपकी हैं। आज तक किसी ने मुझे इतनी आतुर, विह्वल आँखों से नहीं देखा। एक देखना होता है, जिसमें हम बँध जाते हैं, सिमट जाते हैं। उसका देखना ऐसा नहीं था। वह देख रही थी, मुझे धकेलते हुए, जैसे अपने से अलग करते हुए। और मैं ठहर जाता हूँ - अपने को खींचकर रुक जाता हूँ। जिंदगी में जवाबदेही का लमहा एकदम किस तरह आ जाता है,

जब हम उसकी बहुत कम प्रतीक्षा कर रहे होते हैं, जैसे वह हमारे लिए न हो, किसी दूसरे के लिए आया हो, दूसरे के लिए नहीं तो तीसरे के लिए, तीसरे के लिए नहीं तो चौथे, पाँचवें, छठे के लिए, चाहे जिसके लिए हो, हमारे लिए नहीं है। लेकिन वह है कि काँपते-चीखते हाथों से हमें पकड़ लेता है - किंतु हम ताकतवर हैं और अपने को छोड़ा लेते हैं और सोचते हैं, यह एक दुःस्वप्न है, जो अभी बीत जाएगा और आँखें खोलकर वही देख लेंगे, जो देखना चाहते हैं, जिसके हम आदी हैं, और फिर हम जवाबदेह नहीं रहेंगे, किसी के भी नहीं, किसी के प्रति भी नहीं...

किसी के प्रति भी नहीं। मैं भागने लगता हूँ। भागने लगता हूँ और पीछे मुड़कर नहीं देखता। मेरे पीछे झाड़ी है और उसकी बीभत्स भुतैली हँसी, जो देर तक मेरा पीछा करती रही है, लहू के कतरों की तरह मेरे भागते पैरों के पीछे टपकती रही है...

उस रात मैं होटल नहीं जा सका। सारी रात शहर के शराबखानों के चक्कर काटता रहा। शराबियों के संग, उनके कंधों में हाथ डालकर गाता रहा। जब मैं थककर एक शराबखाने में सो जाता, तो वे मुझे घसीटकर बाहर सड़क पर फेंक देते और फिर कुछ देर बाद दूसरे शराबी मुझे अपने संग किसी अन्य शराबखाने में ले जाते और मैं इस तरह बारी-बारी सोता, जागता, गाता, घिसटता हुआ समूचे शहर की अँधेरी गलियों में घूमता रहा।

आप विश्वास करें, आज तक मैंने कभी आत्महत्या के बारे में नहीं सोचा - मेरा मतलब है, अपनी आत्महत्या के बारे में - वैसे एक बौद्धिक समस्या के रूप में अवश्य दोस्तों से बात की है, कभी-कभी एक अजीब-सा विचार तंग करने लगता है। सोचता हूँ, यदि उस रात कोशिश करता तो शायद कर सकता था...

जैसा आप देखते हैं, मैंने उस रात आत्महत्या नहीं की। उसके बाद भी नहीं। लेकिन यह जानते हुए भी कि मैं जिंदा हूँ, पतझड़ की उस शाम के बाद अक्सर शंका होने लगती है कि मरने के लिए आत्महत्या बहुत जरूरी नहीं है...

दूसरे दिन सुबह मैं वह शहर हमेशा के लिए छोड़कर आगे चला गया।



